ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

सर्कस, एक भारतीय परम्परा

17

स्तुति पाण्डेय*

सर्कस विदेशी शब्द है, जिसका सार्थक अर्थ है एक गोल घेरा या परिधि में आमोद प्रमोद के द्वारा विविध कार्यों को सम्पन्न करना जिससे दर्शक उन्हें चारों ओर से विधिवत् देख सकें।

भारतवर्ष में सर्कस की परम्परा प्रागैतिहासिक काल से ही चली आ रही है। प्राचीन काल में ही मध्य एशिया से अलग अलग तरह के कलाबाज अपने दल सहित भारत में आया जाया करते थे। भारत के बड़े–बड़े नगरों में कई तरह के आश्चर्यजनक खेल व कलाबाजियों के करतब दिखाकर लोगों को आश्चर्यचकित कर देते थे। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र से यह ज्ञात होता है कि भारत में इन कलाकारों का आना अवैध था। अतः इन पर बहुत प्रतिबंध लगाये गए, किन्तु साथ ही नागरिकों पर भी विशेष सख्ती थी कि ऐसे प्रदर्शन में अवश्य जाएं एवं प्रदर्शनकारियों को निर्धारित 'कर' देने के अतिरिक्त अपनी प्रसन्नता व प्रशंसा के प्रतीक के रुप में इन कलाकारों को कुछ द्रव्य या पुरस्कार अवश्य प्रदान करें। ऐसे सार्वजनिक कलाओं को लुक–छिपकर देखने वालों को दंडित भी किया जाता था । इन कलाकारों को शक की दृष्टि से भी देखा जाता था एवं कौटिल्य द्वारा इनके प्रति बड़ा कड़ा व सख्त रुख था । इन कलाकारों द्वारा की गई तरह–तरह की किसी भी गलत हरकतों के लिए तरह–तरह के दण्ड भी निधारित थे ।

वर्तमान भारत में रह रहे नट्–बंजारे जाति के लोग सम्भवतः इन्हीं कलाकारों के अवशेष वंशज है जो भारत में प्रवेश कर यहीं बस गए । प्राचीन काल के सर्कसों की कलाबाजियों में व्यायाम, कुश्ती, नटकला, इन्द्रजाल, बाजीगरी, पशु–पक्षियों के खेल व युद्व के दृश्य भी शामिल होते थे। ये कलाबाज अपने दलों में पशु–पक्षी भी रखते थे। आधुनिक सर्कसों की तरह जानवर कर्तव्य दिखाते थे। इनमें हांथियों की लडाई, घुड़दौड़, मेढको की लडाई आदि प्रमुख थे। वाराणसी स्थित भारत कला–भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संग्रह के रुप में एक प्राचीन मिट्टी का पका हुआ टुकड़ा प्राप्त हुआ है, जिसमें ऐसे दृश्य अंकित किये गये है।

*शोध छात्रा, प्रवक्ता–कर्मयोगी डिग्री कालेज, रायबरेली, उ0 प्र0

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

इन कलाबाजों के दल में विदुषक(जोकर) भी थे जो बड़े चतुर व विनोदी स्वभाव के व्यक्ति होते थे और दर्शकों का निरन्तर मनोरंजन करते थे तथा हंसाने के लिए वे अपनी बनावटी मूर्खता को भी प्रदर्शित करते थे। आमोद–प्रमोद के सभी कार्यक्रम राजा के सम्मुख व प्रायः महल में राज प्रासाद के विस्तृत प्रांगण में सम्पन्न होते थे। प्रजा को आयोजनों या समारोहों की सूचना भेरी व शंखनाद द्वारा दी जाती थी। इसमें सम्मिलित होने के लिए लोग दूर–दूर से आते थे। एक कथा के अनुसार वाराणसी व तक्षशिला के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते युवकों को उनके माता–पिता इन आयोजनों को देखने के लिए विशेष सन्देशवाहक भेजकर बुलवाते थे। राजमहल के सिंह द्वारा पर विशेष सन्देश ताना जाता था व राजा के लिए सिंहासन लगाया जाता था। जनता अपने पद, कुल व वर्ग एवं श्रेणी के अनुसार स्थान लेती थी वे इन आयोजनों में विशेष रुचि लेते थे। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए शोर मचाते, तालियां पीटते, अथवा कलाकार की ओर वस्त्र व आभूषण उछालते थे। सभी उत्सव राज्य की परम्परा के अनुसार आयोजित व सम्पन्न किए जाते थे। उत्सवों में भाग लेना व सम्मिलित होना हर नागरिक का अधिकार व कर्तव्य था। इसलिए हर नागरिक को उसकी व्यवस्था के लिए योग देना आवश्यक था उससे विमुख होने वाले या न मानने वाले को दण्डित किया जाता था। खेल व मनोरंजन के लिए कभी–कभी सार्वजनिक स्थान प्रायः बस्ती के बाहर किन्तु नगर की सीमा में ही होते थे। प्राचीन काल के जातक कथा में एक ऐसे ही तमाशे का वर्णन प्राप्त होता है–

एक बार राजगृह में एक नट अपने दल–बल सहित आया। उसके साथ उसकी बेटी आई जो परम् रुपवती थी। नगर के सेठ का बेटा उस नट की कन्या के रुप यौवन व कौशल पर मोहित हो गया। उसने उस लड़की से विवाह का प्रस्ताव रखा। परन्तु लड़की के पिता ने धन लेकर भी कन्या देने से इन्कार कर दिया। किन्तु सेठ के पुत्र के समक्ष शर्त रखी कि यदि वह हमारी टोली में शामिल हो जाए तो मै अपनी कन्या का विवाह उससे करा दूंगा। उग्रसेन ने शर्त को स्वीकार कर लड़की से विवाह कर लिया और नटों के दल में शामिल हो गया। इसी बीच नटी से उग्रसेन का पुत्र पैदा हुआ। खेतले हुए वह नटी उसे गाड़ीवान का बेटा, लकड़हारा का बेटा, निकम्में का बेटा आदि कहकर सम्बोधित करती थी।

क्योंकि उसका पति नट न होने के कारण कोई भी करतब या कौशल नहीं दिखा सकता था। केवल दल की गाड़ियों या अन्य उपकरणों की देख–रेख उसके सुपुर्द था। अन्ततः पत्नी के तानों से तंग व दुखी होकर उग्रसेन ने उसका साथ छोड़ दिया। वह अपने ससुर के पास आया जहाँ उसने नट विद्या ग्रहण की । इसमें दक्ष होकर वह यात्रा करते हुए अपने नगर राजगृह जा पहुँचा। वहाँ उसके आने से सारे नगर में सूचना पहुंच गई। किन्तु नगर के सभ्यजनों को उसका काम घटिया लगता था। अतः वे तथागत् बुद्ध के पास गए कि वे उग्रसेन को यह निम्न कोटि का पेशा छोड़ने के लिए समझाएं। इसी बीच उग्रसेन अपना करतब प्रारम्भ कर चुका था। लगभग 90 फिट ऊँचे स्तम्भ पर चढ़ कर उसके सिरे पर उछल कर स्तम्भ में सात बार कलैया लेकर वह स्तम्भ के सिरे पर वापस आ गया। तब तक बुद्ध वहाँ पहुँच चुके थे। उनके समक्ष ही वह स्तम्भ के सिरे पर से आकाश में उछाल करके बार–बार चौदह कलैया लेकर सही सलामत स्तम्भ के

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

सिरे पर आ गया। इसके पष्चात् तथागत् बुद्ध ने उग्रसेन को समझाया, इस प्रकार उसने अपना इरादा बदल कर शरणागत हो गया। इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित, भरहुत के एक शिलाखण्ड पर अंकित ऐसी ही कलाबाजी का दष्श्य प्राप्त होता है।

जातक कथाओं से प्राप्त वाराणसी में दो कलाकारों मुसील और गुहिटल की प्रतियोगिता का रोचक वर्णन प्राप्त होता है। महल के द्धार पर सूचना टांगा गया व राजा के लिए विशेष सिंहासन तथा नागरिकों के लिए कई आसनों की व्यवस्था की गई, जो विभिन्न श्रेणियों में थी। निर्धन या अमीर लोग नए कपड़े पहनकर, फूल–मालाओं से सुसज्जित होकर उत्सवों में सपरिवार सम्मिलित होते थे। प्रायः रात में होने वाले आयोजन या उत्सव पूर्णिमा को होता था ताकि चन्द्रमा का प्रकाश पूर्णतः मिल सके। क्योंकि उन दिनों वर्तमान की भांति रोशनी की पूर्ण व्यस्था उपलब्ध नहीं थी। इन सर्कसों में तीरन्दाजी के कौशल भी प्रस्तुत किए जाते थे। एक जातक कथा में वर्णित है कि ज्योतिपाल वीर धनुर्धर था। वह प्रदर्शन स्थल पर चारों कोनों में केले के एक–एक टुकड़े को रखकर बाण से भेदता था। आश्चर्य तब होता था जब वह एक ही बाण से चारो कोनों के केले को भेदकर उसका बाण वापस आ जाता था उसके बाण में एक लाल धागा बंधा होता था जिससे दर्शकों को काई संदेह न हो। दर्शक उसके चमत्कार पर हर्षोल्लास के साथ आभूषण व वस्त्र न्योछावर करते थे। अपनी कला की आड़ में कोई दुष्कर्म करने पर उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था किन्तु अपना हुनर प्रस्तुत करने में उन्हें प्रोत्साहन भी प्राप्त होता था।

प्राचीनकाल से लेकर पौराणिक व ऐतिहासिक युगों में लगभग यही परम्परा चलती रही। मुगल शासनकाल में शासकों की अस्थिरता व सन्देहास्पद स्थिति के परिणामस्वरूप जनजीवन संकटग्रस्त हो गया। जिसके फलस्वरूप लोग मनोरंजन को भूल ही गए थे।

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

भारत में आधुनिक तरीके से सर्कस का प्रचलन यूरोपियनों के आने के साथ ही प्रारम्भ हुआ। विदेशी सर्कस कम्पनियां भारतीय राजाओं व नवाबों के पास जाकर मनोरंजन करती थी। इनमें विदेशी सुन्दरियां भी होती थीं। जो अपने अंग–प्रत्यंग के प्रदर्शनकारी कलाबाजी के बहाने दर्शकों को अपने जाल में कस लेती थी। उस दिनों भी तम्बू व शामियाना होता था जो रोशनी के लिए चारों ओर बहुत सी मशाले जलाई जाती थी। भारत कला भारत भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में राजस्थानी शैली का एक रेखा–चित्र है जिस पर सामने सम्वत् 1909 (लगभग 1862 ई0 फागुनसदी, सायव मालीचन साव अंकित है।)

यद्यपि वर्तमान सर्कस के रूप–स्वरूप एवं आकार तथा खेलों में बहुत परिवर्तन व विकास हुआ है, किन्तु उनके मूलभूत आधार प्राचीन भरत के ही प्रदर्शन है।

ग्रन्थ सूची–

धर्म युग– मनोरमा, अक्टूबर–1982

© *2015 Journal Anu Books.* Authors are responsible for any plagiarism issues.